वर्ष-69 अंक-08 ❖ अगस्त 2026 (कुल पृष्ठ-20) प्रति अंक : मूल्य ₹ 10/-

भारतीय भाषाओं की
समन्वय-संस्कृति का उद्‌गाता

मंगल प्रभात

आचार्य काकासाहेब कालेलकर स्मृति विशेषांक

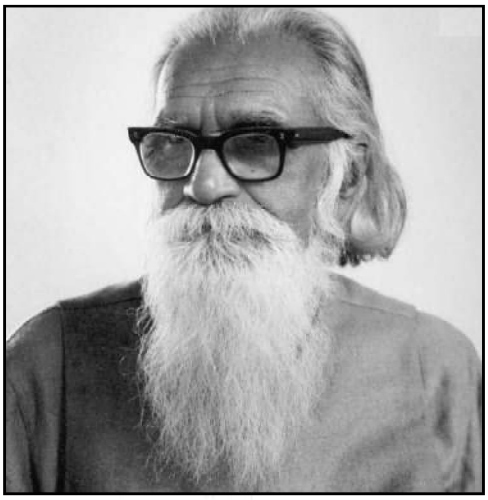

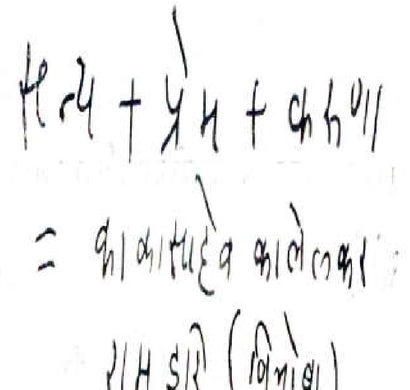

गांधी हिन्दुस्तानी साहित्य सभा
1, जवाहरलाल नेहरू मार्ग, सन्निधि, राजघाट, नई दिल्ली-110002

5-6 अगस्त, 2026 Postal R.No.DL(C)-01/1242/2024-26

मंगल प्रभात मासिक RNI-813/57

इस अंक में

1. आचार्य काकासाहेब कालेलकर जीवन और कार्य **–सव्यसाची** 03

2. गांधीजी के निकट के साथी काकासाहेब कालेलकर **–उमाशंकर जोशी** 10

3. गुजरात की हिन्दी सेवा **–न. अं. व्यास** 14

4. गांधीजी की जीवन-साधना **–काका कालेलकर** *कवर पृष्ठ* 20

ई-मेल अथवा व्हाट्सएप द्वारा 'मंगल प्रभात' मंगवाने के लिए सम्पर्क करें–
ई-मेल : ghss.sannidhi@gmail.com • व्हाट्सएप नं. : 9911891104

मंगल प्रभात के प्रत्येक अंक का **e-paper** गांधी हिन्दुस्तानी साहित्य सभा की वेबसाईट **www.ghsssannidhi.org** पर उपलब्ध है।

'मंगल प्रभात' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के हैं। उनके साथ मंगल प्रभात के सम्पादक का या संस्था का सहमत होना जरूरी नहीं है।

सम्पादक	:	**प्रो. रमेश भारद्वाज**			
सम्पादकीय सलाहकार	:	**कृष्णा शर्मा एवं सावित्री भारद्वाज**			
वार्षिक चन्दा	:	₹ 100/-	**पंचवर्षीय**	:	₹ 500/-
एक प्रति	:	₹ 10/-	**दस वर्षों के लिए**	:	₹ 1000/-

आचार्य काकासाहेब कालेलकर जीवन और कार्य

✍ **सव्यसाची**

बम्बई युनिवर्सिटी से 1907 में दर्शन शास्त्र के स्नातक होने से एक वर्ष पहले ही युवक दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर ने यह गम्भीर प्रतिज्ञा की थी कि 'भारत जब तक विदेशी राज्य की गुलामी से मुक्त नहीं हो जायेगा, तब तक न मैं चैन से बैठूँगा और न ब्रिटिश सरकार को चैन लेने दूँगा।'

तब से अंत तक आचार्य काकासाहेब राष्ट्रसेवा की अनेकविध प्रवृत्तियों में पूर्णत: ओतप्रोत रहे। गांधीजी की ही सूचना से 'गुजरात विद्यापीठ' के कुल-नायक के रूप में (1928 से 1935) सात वर्ष तक सेवा करते हुए उन्होंने शिक्षा-शास्त्री के रूप में कीर्ति प्राप्त की। मराठी, गुजराती और हिन्दी समाचार-पत्रों का सम्पादन करके सत्यनिष्ठ निर्भय पत्रकार के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त की। इन तीनों भाषाओं में (और कुछ अंग्रेजी भाषा में भी) उन्होंने विपुल साहित्य का सृजन करके सरस्वती के उपासकों की पंक्ति में उच्च स्थान प्राप्त किया। 1959 में अहमदाबाद में हुई 'गुजराती साहित्य परिषद' के वे सभापति हुए। 'भारतीय साहित्य अकादमी' के आजीवन फेलो नियुक्त किये गये। राजनीतिक के रूप में राष्ट्रीय महासभा के कार्यक्रमों में उन्होंने सक्रिय भाग लिया और पांच बार (1923, 1930, 1932, 1933, 1942-45) लंबा कारावास भोगा। राष्ट्रीय महासभा की महासमिति (ए.आई.सी.सी.) के वे सदस्य थे। हरिजन तथा अन्य पिछड़ी जातियों के उत्कर्ष के प्रखर हिमायती के रूप में भारत सरकार ने 'बेकवर्ड क्लासेस कमीशन' के अध्यक्ष के रूप में उनकी (1953-55) नियुक्ति की। विख्यात लेखक के रूप में उन्होंने, मराठी, गुजराती और अंग्रेजी, इन चार भाषाओं में 120 के लगभग पुस्तकें सरस्वती मां के चरणों में भेंट कीं। अलबत्ता इनमें से कई पुस्तकें इन चारों भाषाओं में प्रकाशित हुईं।

हिन्दी का प्रचार करने तथा उसे भारत की 'राष्ट्रभाषा' के पद पर प्रस्थापित करने के लिए काकासाहेब जीवन भर अनथक परिश्रम करते रहे। संस्कृत-प्रधान अथवा फारसीबहुल शब्दों से बनी दुर्बोध हिन्दी की दोनों शैलियाँ उनको मान्य नहीं थीं। वे मानते थे कि जनसाधारण के लिए दोनों शैलियाँ समान रूप से दुरूह हैं। हिन्दी की ऐसी शैली का वे समर्थन करते थे जो 'सब की बोली' बन सके। इसी प्रकार की हिन्दी भाषा में विपुल मौलिक साहित्य का सर्जन करके और हिन्दी-प्रचार का विस्तृत उपक्रम चलाके उन्होंने हिन्दी की सघन और प्रशंसनीय सेवा की है। उसके उपलक्ष्य में 1959 में 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति', वर्धा की ओर से उन्हें 'महात्मा गांधी पारितोषिक' अर्पित किया गया और 1968 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन' प्रयाग ने उन्हें सम्मेलन की उच्चतम पदवी 'साहित्य वाचस्पति' से अलंकृत किया।

जन्म, स्कूल, कालेज-शिक्षा तथा विवाह

दत्तात्रेय का जन्म एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण कुटुम्ब में, महाराष्ट्र की ऐतिहासिक राजधानी सातारा शहर में 1 दिसम्बर, 1885 को हुआ था। उनके पिता श्री बालकृष्ण जिवाजी कालेलकर अंग्रेज सरकार के अत्यन्त विश्वस्त तथा आदरणीय ट्रेजरी अफसर थे। पिताजी की बदली अकसर अलग-अलग स्थानों पर हुआ करती थी, इस कारण दत्तू (दत्तात्रेय) की प्राथमिक शिक्षा उन उन स्थानों की प्राथमिक पाठशालाओं

में हुई।

उन्होंने लगभग 18 वर्ष की उम्र में मैट्रिक की परीक्षा (1903) पास की। उसी अर्से में शहापुर बेलगाँव के शिरोड़कर नामक एक सर्राफ की ज्येष्ठ कन्या कुमारी सुन्दरा के साथ उनकी शादी हो गयी। फिर तो सुन्दरा का नाम लक्ष्मी हुआ। 1929 में दो अल्प वयस्क पुत्रों को छोड़कर लक्ष्मी देवी का साबरमती आश्रम में देहावसान हो गया।

पूना के फर्ग्युसन कालेज में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे उन दिनों में ही युवक दत्तात्रेय सशस्त्र तैयारी द्वारा विदेशी सरकार को उलट देने का समर्थन करने वाली दो तीन राजनीतिक गुप्त मंडलियों के संपर्क में आये। बम्बई युनिवर्सिटी से बी.ए. की डिग्री प्राप्त करने से एक वर्ष पहले (1906) से ही दत्तात्रेय ने अपनी गुप्त क्रांतिकारी प्रवृत्तियाँ शुरू कर दी थीं। कालेज के दिनों में ही विवेकानन्द और लोकमान्य तिलक के लेखों का उन पर गहरा प्रभाव पड़ा और उनसे ही दत्तात्रेय के जीवन का तत्त्वज्ञान निर्मित हुआ। उनके आधार पर ही उनके भावी जीवन का मार्ग निश्चित हुआ। उस जमाने में आमतौर पर सुप्रसिद्ध कानूनदां वर्ग (धारा- शास्त्री लोग) राजनीति के क्षेत्र का नेतृत्व किया करते थे। इस कारण यह स्वाभाविक था कि राजनीति के क्षेत्र में ही कार्य करने की आकांक्षा रखने वाले कालेलकर के मन में कानूनदां (धाराशास्त्री) लोगों की पंक्ति में ही नाम लिखाने की अभिलाषा जाग्रत हो और बंबई के सरकारी लॉ कालेज में वे नाम लिखावें। 1908 में उन्होंने एल.एल.बी. की प्रथम वर्ष की परीक्षा तो पास कर ली, पर अपना सारा समय राष्ट्रसेवा में अर्पित करने की आकांक्षा रखनेवाले युवक दत्तात्रेय को कानून की शिक्षा के लिए एक वर्ष और खर्च करने जितना धीरज नहीं थी। अपने कानून अध्ययन को उन्होंने तिलांजलि दे दी। क्रांति की लहरों पर सवार युवक के घोड़े रोके न रुके।

राष्ट्रीय सेवा का हरिः ॐ

सन् 1909 में 24 वर्ष की अवस्था में बेलगाम के 'गणेश विद्यालय' नामक एक राष्ट्रीय विद्यालय में प्रधानाध्यापक के रूप में उन्होंने सेवा का प्रारम्भ किया। परन्तु थोड़े ही दिनों में उस विद्यालय पर सरकार की कोप दृष्टि पड़ी और वे उसे बन्द करके लोकमान्य तिलक के दैनिक पत्र 'राष्ट्रमत' के सम्पादक मंडल में सम्मिलित हो गये। 'राष्ट्रमत' केवल समाचार-पत्र ही नहीं था, बल्कि 30-35 राष्ट्रभक्तों का एक सेवा मंडल था। उसके सरदार थे, लोकमान्य तिलक के शिष्य और कर्णाटक के नेता, गंगाधर राव देशपांडे। युवक कालेलकर के अन्य साथियों में थे–वीर वामनराव जोशी, हरिभाऊ फाटक, दत्तोपंत आप्टे, ओगले और युवा स्वामी आनन्द। 'राष्ट्रमत' के कार्यालय में ही एक 'कम्यून' बनाकर ये लोग रहते थे। इस मंडली को लोगों ने प्रेम और आदर से 'राष्ट्रमत' की संज्ञा दे दी थी। बाद में इन सभी ने देश के स्वतंत्रता संग्राम में अपना आदर्श योगदान देकर अपनी तेजस्विता प्रदर्शित की थी। इस मंडल पर भी अंग्रेज सरकार की नजर न पड़े यह कैसे संभव था? इसी बीच नासिक के अंग्रेज जिला कलेक्टर मि. जेक्सन की हत्या कर दी गई। प्रतिक्रिया स्वरूप सरकार ने जो क्रूरतापूर्ण दमन चक्र चलाया जिसकी वजह से 1910 में 'राष्ट्रमत' का प्रकाशन बंद हो गया। देश की ब्रिटिश सरकार के पुलिस विभाग की ओर से सतत जब्ती, परेशानी, तलाशी आदि की कार्रवाइयाँ शुरू हुईं उनसे उकता कर युवक कालेलकर बड़ौदा की देशी रियासत में खिसक गये। वहाँ योगी अरविंद और उनके निकट के स्नेही और प्रखर राष्ट्रवादी महानुभाव बैरिस्टर केशवराव देशपांडे द्वारा स्थापित 'गंगनाथ भारतीय सर्व विद्यालय' नामक संस्था में उन्होंने सन् 1911 में आचार्य का पद सम्हाला। प्राचीन तथा

अर्वाचीन शिक्षा-पद्धतियाँ अपना कर राजनीतिक तथा सामाजिक निस्पृह सेवकों का दल निर्माण करने के उद्देश्य से यह संस्था स्थापित की गई थी। इस संस्था में एक पारिवारिक वातावरण उत्पन्न करने की भावना से सारे अध्यापकों को 'काका', 'मामा', 'अण्णा', 'अप्पा' इत्यादि घरेलू और स्नेहिल नामों से संबोधित किया जाता था। यहीं से युवक कालेलकर को 'काका' का उपनाम मिला और वे 'काका कालेलकर' बने। देशी रियासत में स्थापित संस्था अपेक्षाकृत अधिक समय तक सुरक्षित रह सकेगी, संस्थापकों की यह आशा थोड़े ही समय में छिन्न-भिन्न हो गई। सन् 1911 में हुए दिल्ली दरबार में महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ ने ब्रिटिश सम्राट के सामने स्वागत के बाद, पीठ न दिखाते हुए पीछे-पीछे चलने से इन्कार कर दिया। परिणाम स्वरूप महाराजा को ब्रिटिश सरकार की कोप दृष्टि का सामना करना पड़ा और उनको शंका की दृष्टि से देखा जाने लगा। इस स्थिति को देखते हुए गायकवाड़ सरकार के प्रमुख मंत्रियों ने महाराजा को अपरोक्ष रूप में यह संकेत किया कि 'गंगनाथ विद्यालय' को इस समय बंद कर देना उचित होगा। परिणाम स्वरूप विद्यालय बंद हो गया।

परिभ्रमण और आत्म-निरीक्षण

ब्रिटिश सरकार की 'काली किताब' में काका कालेलकर की 'करतूतें' केवल चढ़ नहीं चुकी थीं, काफी प्रसिद्धि भी पा गई थीं। सत्ताधिकारियों की तीखी नजरों के नीचे रहते हुए काम करने में उन्हें बड़ी बेचैनी और अकुलाहट महसूस हो रही थी। एक ओर जहाँ देश को पराधीनता से मुक्त करने के लिए किसी भी मार्ग को अपनाने का राजनीतिक निश्चय उनके मन दृढ़ हो रहा था, तो दूसरी ओर खींचनेवाले आध्यात्मिक विचार भी मन को मथ रहे थे। इन्हीं विचारों की रस्साकशी गजग्राह उनके मन में चल रहा था। आखिर काका कालेलकर ने उत्तर भारत के पावन धामों की यात्रा करने का निश्चय किया। दाढ़ी-मूँछें बढ़ाई और साधुवेश धारण करके 'साधु दत्तात्रेय' के नाम से हिमालय और उत्तराखंड की कोई 2500 मील की पैदल यात्रा पर वे निकल पडे। 'कर्म-सन्यास' द्वारा नहीं बल्कि 'कर्मयोग' द्वारा आत्मोद्धार की साधना करने के निमित्त की गई यह यात्रा उनको हिमालय के सारे पावन धामों—बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, जमनोत्री, अमरनाथ आदि की ओर तो खींच ही ले गई, परंतु इसी यात्रा काल में क्रांतिकारियों का आश्रय-स्थान माने जानेवाले नेपाल की भी यात्रा कर लेना स्वाभाविक ही था। काकासाहेब आज भी जब कभी हरिद्वार जाते हैं तो ऋषिकेश जाकर और लक्ष्मण झूला पार करके गंगा के उस पार बसे स्वर्गाश्रम जाना नहीं चूकते। वहीं एक छोटी-सी झोंपड़ी में साठ वर्ष पहले उन्होंने तपस्या की थी। काकासाहेब 'साधु दत्तात्रेय' नाम से वहाँ रहे थे। यद्यपि उन्होंने दाढ़ी बढ़ा ली थी और वेश-परिवर्तन भी कर लिया था, परन्तु वे शिक्षा के क्षेत्र से अलिप्त रहें ऐसा न था। सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में क्रांति कर सकनेवाले प्राणवान युवकों का चरित्रगठन करने का जहाँ मौका मिलता वहाँ वे उसका पूरा-पूरा उपयोग कर लेते थे। ऐसे शिक्षा के क्षेत्रों में वे पूरा-पूरा रस लेते थे। इसी कारण 1913 में हरिद्वार के 'सनातनी ऋषिकुल' के आचार्य बने। परन्तु जब इस संस्था के संस्थापकों की इस मान्यता कि शूद्रों को शास्त्रों का अध्ययन करने का अधिकार नहीं है, की उन्हें जानकारी हुई, तो उन्होंने उस संस्था से अपने को अलग कर लिया। वहाँ से घूमते-घामते वे पहले रामकृष्ण मिशन के बेलूर मठ में और बाद में कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शांति निकेतन में जा पहुँचे।

शांति निकेतन और गुरुमिलन

सन् 1914 के मध्य में उन्होंने शांतिनिकेतन में अध्यापक के रूप में प्रवेश किया। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा स्थापित अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त उस संस्था में गुरुदेव ने उनका 'दत्तू बाबू' प्रेमल नामकरण किया और सब उन्हें इसी नाम से पुकारने लगे। कुछ ही महीनों में, दक्षिण अफ्रीका में बैरीस्ट्री करनेवाले तथा वहाँ के भारतीयों के अधिकार के लिए सफल संग्राम करने की कीर्ति प्राप्त श्री मोहनदास करमचन्द गांधी, शांति निकेतन आये। उनके साथी कुछ समय पहले ही शांतिनिकेतन आ चुके थे। गांधीजी के साथ काकासाहेब की पहली मुलाकात यहीं हुई। सन् 1915 की 17वीं फरवरी, पहली मुलाकात की यह तिथि, काकासाहेब की स्मृति में स्थायी रूप से अंकित हो गई थी। यद्यपि यह सही था कि आतंकवादी प्रवृत्ति द्वारा राजनीतिक ध्येय प्राप्त करने की विचार-सरणि से उनकी श्रद्धा कम होती जा रही थी। पर अहिंसा को, कार्यसिद्धि के लिए एक उपयुक्त कार्य-पद्धति के रूप में ही, स्वीकार करने को तैयार न थे। जीवनदर्शन की एक आधारशिला के रूप में उस नीति को स्वीकार कर लेने जितने परिपक्व अभी वे नहीं हुए थे। गांधीजी के साथ कई दिनों तक की लम्बी चर्चाओं के बाद उन्हें प्रतीति हुई कि 'मेरे सच्चे गुरु, मेरे तारणहार, मुझे मिल गये।' उसके एक मास बाद, जब गांधीजी दुबारा शांतिनिकेतन आये तब, छः मार्च 1915 को काकासाहेब ने गांधीजी को बताया कि उनके आश्रम में आकर उससे संबंद्ध होने अपने को तैयार पाते हैं। गांधीजी ने, अपने लाक्षणिक विवेक के अनुसार पहले गुरुदेव से विनति की कि वे दत्तूबाबू को उन्हें दे दें। गुरुदेव ने कहा काका तो हमारे हो गये हैं। मैं उनको आप को उधार दे सकता हूँ। बाद के वर्षो में गुरुदेव कई बार गांधीजी को मजाक में याद दिलाया करते कि "आप 'दत्त बाबू' को उधार तो ले गये हैं, पर उधार ली गई वस्तु को वापस करना भूल गये लगते हैं।"

गांधी दर्शन के चार तत्त्वज्ञों में से एक

जीवन के उस अविस्मरणीय वर्ष (1915) से गांधीजी के उत्सर्ग 1948 तक वे गांधीजी के अविभक्त अनुयायी बने और उनका सहवास 33 वर्षों तक सतत बना रहा।

सन् 1915 में मई महीने की 25वीं तारीख को गांधीजी ने अहमदाबाद शहर से थोड़ी दूर कोचरब गाँव में 'सत्याग्रहाश्रम' की स्थापना की। भारत में स्थापित उनका यह पहला आश्रम था। थोड़े ही समय में अपने छह वर्ष के बड़े पुत्र सतीश को लेकर काकासाहेब आश्रम में प्रविष्ट हुए। सन 1917 के अगस्त महीने में गांधीजी आश्रम को साबरमती ले गये। 1918 में वहाँ काकासाहेब अपनी पत्नी और छोटे पुत्र बाल को भी ले आये। आश्रम ने थोड़ें ही समय में देश के सामाजिक राजनैतिक और आर्थिक आंदोलनों को मार्गदर्शन देनेवाला एक मात्र केन्द्र बनकर देश में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया, उसमें उस काल में वहाँ बसने वाले छोटे से समुदाय में काकासाहेब और उनके परिवार के अलावा श्री किशोरलाल मशरूवाला और उनकी पत्नी, श्री महादेव देसाई और उनकी पत्नी, ब्रह्मचारी विनोबा भावे भी थे। ये चारों महानुभाव आगे चलकर गांधी-विचार तथा गांधी-दर्शन के प्रामाणिक मीमांसक के रूप में प्रख्यात हुए।

शिक्षा-शास्त्री, पत्रकार तथा साहित्य सर्जक

साबरमती आश्रम में गांधीजी ने काकासाहेब को आश्रम की पाठशाला का मुख्याध्यापक बनाया। इसी पाठशाला के द्वारा ही पन्द्रह वर्ष बाद गांधीजी का बुनियादी तालीम का नूतन विचार प्रकट हुआ था।

1920 में असहयोग आंदोलन के एक अंग के रूप में गुजरात की राष्ट्रीय युनिवर्सिटी के रूप में 'गुजरात विद्यापीठ' की स्थापना हुई तब गांधीजी की इच्छा से काकासाहेब ने उसकी स्थापना में अपनी सेवाएँ अर्पण कीं। प्रथम प्राध्यापक के रूप में और बाद में कुल आचार्य और कुलनायक के रूप में काम करने लगे। इस प्रकार वे सात वर्ष (1928 से 1935) कुलनायक रहे।

1922 से 1924 के काल में जब गांधीजी जेल में थे, तब गांधीजी से गुजराती पत्र, 'नवजीवन' तथा अंग्रेजी पत्र 'यंग इन्डिया', दोनों के संपादन का निरीक्षण भार काकासाहेब के जिम्मे आया। इन साप्ताहिकों में छपे एक लेख के कारण उनको जेल यात्रा भी करनी पड़ी। काकासाहेब ने इसे 'मेरा प्रथम जेल-संस्कार' (बेटिज्म आफ इम्प्रिजनमेंट) कहा था। राजद्रोहात्मक लेख लिखकर कानून द्वारा स्थापित सरकार का तिरस्कार करने के आरोप में उन्हें सजा मिली थी।

इस प्रकार गांधीजी के पत्रों के संपादन काल में उनका गुजराती लेखन विशिष्ट रूप से प्रसिद्धि प्राप्त कर गया। यद्यपि गुजराती उनकी मातृभाषा नहीं थी, तथापि उस भाषा पर उनका इस प्रकार का अद्‌भुत प्रभुत्व एवं चमत्कार देखकर गुजराती के बड़े-बड़े सिद्धहस्त लेखक दांतों तले ऊंगली दबाने लगे। गुजराती में उनका निर्मित साहित्य इतना विपुल तथा लोकप्रिय हो उठा कि सांस्कारिक और साहित्यिक रुचि रखनेवाला कोई भी घर काकासाहेब की लिखी पुस्तकों से खाली नहीं रहा। गुजरात की तथा अन्य युनिवर्सिटियों में, जहाँ गुजराती लिखाई पढ़ाई जाती थी वहाँ उनकी पुस्तकें मैट्रिक से लेकर एम.ए. तक के अभ्यास क्रमों में लगाई जाती रही हैं। उनके गहन, विद्वत्तायुक्त तात्विक लेख, गीता पर लिखे उनके भाष्य, संस्कृति विषयक निबंध, प्रवास वर्णन, खास करके प्रकृति और उसकी भव्यता का दर्शन और निरूपण करने वाले सरल तथा विनोदयुक्त निबन्ध, अत्यन्त लोकप्रिय हुए हैं। 'उत्तर की दीवारें' नामक उनकी बहु-चर्चित तथा व्यापक प्रचार व प्रसार प्राप्त पुस्तक, यों तो जेल जीवन के अनुभवों का दर्शन देनेवाली पुस्तक है, पर कारावास कहानी की अपेक्षा वह प्रकृति वर्णन से ही भरी हुई है। गांधीजी को भी यह पुस्तक बहुत पसंद आयी थी।

1960 में बम्बई सरकार ने 'चि. चंदन के नाम' नामक पत्र-व्यवहार वाली पुस्तक को उस वर्ष का राज्य पारितोषिक प्रदान किया था।

बहुभाषाविद्, विद्वान, तत्त्वज्ञ और साहित्यकार के रूप में सारे देश में ख्याति प्राप्त काकासाहेब ने गुजराती, मराठी और हिन्दी के साहित्य क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान प्राप्त किया था। इन तीनों भाषाओं में तथा अंग्रेजी में भी उनकी अब तक कोई 120 से भी अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। संस्कृत भाषा के वे विद्वान थे और इस भाषा का भी उनका गहरा अध्ययन था। इसके उपरांत शांति निकेतन के अध्यापन काल में काकासाहेब का बंगाली भाषा का भी ज्ञान सघन न हो यह कैसे संभव था? इतना ही नहीं, 1942 में मिले जेलवास के दरम्यान कन्नड़ भाषा का भी उन्होंने थोड़ा अध्ययन कर लिया। कोंकणी भाषा के तो वे पुरस्कर्ता ही थे।

रवीन्द्र साहित्य के प्रेमी-भक्त

काकासाहेब ने यद्यपि बंगाली भाषा में कोई लेखन कार्य नहीं किया तथापि उस भाषा का उनका ज्ञान इतना अच्छा था कि रविबाबू के काव्यों का अनुवाद करके उन्होंने अपनी विशिष्ट शैली में उनका अर्थ- निरूपण अपनी 'रवीन्द्र प्रतिभा' नामक पुस्तक में किया है उस पुस्तक ने मराठी, गुजराती और हिन्दी इन तीनों भाषाओं में एक समान लोकप्रियता प्राप्त कर ली है। इस पुस्तक में

रविबाबू की 'लिपिका' नामक संग्रह में से 39 गद्य काव्यों का उन्होंने अनुवाद और अर्थ-निरूपण किया है। मूल काव्य के अनुवाद की अपेक्षा विस्तृत अर्थ-निरूपण के कारण काव्य का हार्द एकदम सुस्पष्ट हो जाता। ये निरूपण पाठकों को कई बार ऐसी प्रतीति कराते मालूम होते हैं कि निरूपण-कार की शैली, कहीं गहरे में, मानो रविबाबू की शैली न हो, रवीन्द्रबाबू की गीतांजलि का भी काकासाहेब ने मराठी में तीन भागों में इसी प्रकार का विस्तृत निरूपण प्रस्तुत किया है। रविबाबू के ही एक लघु उपन्यास 'मालंच' का भी उन्होंने मराठी में अनुवाद किया है। रविबाबू के सम्बन्ध में लिखे उनके गुजराती लेखों के संग्रह को तो गुजरात राज्य की ओर से पारितोषिक भी मिला है।

हिन्दी के प्रखर समर्थक

जब गांधीजी साबरमती आश्रम का विसर्जन करके वर्धा में रहने लगे तब से काकासाहेब भी वर्धा में ही रहने गये। देवनागरी लिपि में जरूरी सुधार करने की काकासाहेब की प्रवृत्तियों का गांधीजी ने हार्दिक पुरस्कार किया। देशभर में हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में प्रचार करने का काम गांधीजी ने काकासाहेब को सौंपा। तब से काकासाहेब अपना अधिकतर लेखन तथा व्याख्यान आदि हिन्दी में ही करते थे। हिन्दी पाक्षिक पत्र 'मंगल प्रभात' का संपादन 30 वर्षों तक किया। गांधीजी के इन विचारों के कि 'देश की एकता के लिए हिन्दी और उर्दू' दोनों भाषाओं का निष्ठापूर्वक अभ्यास करना चाहिये तथा इन दोनों भाषाओं के अच्छे और सरल शब्दों का सुयोग्य समन्वय करनेवाली एक ऐसी सरल शैली 'हिन्दुस्तानी' को अपनाना चाहिए जो दोनों लिपियों में लिखी जाती है और जिसे सब समझते हैं काकासाहेब समर्थक थे।

इलाहाबाद के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के शुद्ध हिन्दी के पक्षपातियों ने गांधीजी और काकासाहेब की इस परिभाषा का विरोध किया। "यह विरोध उत्पन्न न हुआ होता तो काकासाहेब, हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापति पद कभी का सुशोभित कर चुके होते।" ये उद्गार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के एक महान आधार स्तम्भ स्व. श्री पुरुषोत्तम दास टण्डन ने स्वयं एक बार व्यक्त किये थे। मजे की बात यह थी कि काकासाहेब जो सुघड़, सुसंस्कृत और उदात्त हिन्दी भाषा बोलते व लिखते थे उसे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के शुद्ध हिन्दी के पक्षपातियों को भी स्वीकार थी और उन्हें वह प्रिय भी लगती थी। वे मजाक में कहा करते थे कि काकासाहेब जिस सुसंस्कृत शैली में लिखते थे वही अगर 'हिन्दुस्तानी' है तो वह हमें स्वीकार है और इसी कारण हिन्दी साहित्य सम्मेलन की विचारसरणि की हिमायत करने वाली वर्धा की 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' ने 1959 में काकासाहेब को 'महात्मा गांधी पुरस्कार' अर्पित करके सम्मानित करने में किसी प्रकार का संकोच अनुभव नहीं किया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने भी अपनी अत्युच्च मानार्ह पदवी (डिग्री) 'साहित्य वाचस्पति' काकासाहेब को सन् 1968 में अर्पण करके उनका सम्मान किया था।

शब्द शिल्पी (मिन्ट मास्टर[1])

व्युत्पत्ति शास्त्र के विद्वान और सात भाषाओं के जानकार, निपुण भाषाविद् काकासाहेब ने अंग्रेजी भाषा के हजारों शब्दों के पारिभाषिक शब्द भारतीय भाषाओं में गढ़े हैं। इसी तरह से गुजरात के विद्वान विवेचक तथा भाषा-शास्त्री काकासाहेब को स्नेहपूर्वक 'शब्द शिल्पी' (मिन्ट मास्टर) कहा करते हैं।

बरसों पहले मताग्रही पण्डितों ने शब्दों के जाल गूँथकर जबड़ा तोड़ क्लिष्ट शब्द गढ़ने का काम शुरू किया था। काकासाहेब ने यह पद्धति न

अपनाकर रोचक प्रतिशब्द निर्माण करने की नीति-निर्माण की। 'इरीगेशन' के लिए 'भगीरथ विद्या' डायरी के लिए 'वासरी' (वासर का अर्थ दिन होता है), गेम सेंक्चुरी के लिए 'अभयारण्य' जैसे सुगम, सुन्दर तथा सुग्राह्य शब्द इसके नमूने हैं।

चिर-प्रवासी

घूमने का आनन्द प्राप्त करने के अदम्य शौकीन काकासाहेब ने सारे भारत की एकाधिक बार विस्तृत यात्रा की है। इसके उपरांत दुनिया के अनेक देशों का उन्होंने विस्तृत प्रवास किया है। प्रवास के अन्त में उन देशों के प्रवासों के वर्णन तथा संस्मरण का प्रसाद भी पाठकों को बाँटा है। उनकी जापान सम्बन्धी पुस्तक को साहित्यिक पारितोषिक प्राप्त हुआ है। पूर्व अफ्रीका के प्रवास के बाद उनकी लिखी 'अवर नेक्स्ट शोर नेबर्स' अंग्रेजी पुस्तक के तीन संस्करण हो चुके हैं।

भारत की स्वतन्त्रता के बाद

चुनाव के शोर शराबे से काकासाहेब को बड़ी अरुचि थी। उन्होंने कभी कोई राजकीय पद के चुनाव के लिए उम्मीदवारी नहीं की। राज्यसभा के सदस्य तभी बनने को राजी हुए जब प्रधानमंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू की सलाह से 1952 में राष्ट्रपति ने अग्रणी साहित्यकार तथा शिक्षणकार के रूप में उनकी नियुक्ति की। जब इस सदस्यता का 6 वर्ष का कार्यकाल समाप्त हुआ तो राष्ट्रपति ने दुबारा छह वर्ष के लिए उनकी नियुक्ति की। 1964 में अप्रैल मास में संसद के इस क्षेत्र से बारह साल के बाद वे निवृत्त हुए।

भारत की पिछड़ी जातियों के उद्धार के लिए भारत सरकार द्वारा नियुक्त कमीशन के वे अध्यक्ष बनाए गये। उन्होंने सारे देश का प्रवास किया। हरिजन, आदिवासी तथा अन्य पिछड़ी जातियों की समस्याओं का गहरा अध्ययन किया तथा उनके हल के लिए अपने सुझाव विस्तृत रिपोर्ट के रूप में दिये। जिसको अमल में लाने हेतु आज भी कई देश हितचितक आग्रह करते रहते हैं।

'पद्मविभूषण' द्वारा सम्मानित

1964 के गणतंत्र दिवस के दिन प्रदान की गई उपाधि प्राप्त करने वालों की सूची में राष्ट्रपति ने काकासाहेय को 'पद्मविभूषण' से विभूषित किया। इस वर्ष दी गई इस पदवी को प्राप्त करने वाले दो ही व्यक्ति थे। शिक्षण और साहित्य के क्षेत्र में आधी सदी से भी अधिक समय से वे अनन्य रूप से सेवा करते आ रहे थे। राष्ट्र ने उनको जो यह सम्मान दिया उसका आदर करते हुए उसके लिये उस प्रसंग पर काकासाहेब ने इतना ही कहा–

"गांधीजी जैसे युग पुरुष का अनुयायी होने का सद्भाग्य मुझे मिला, और इसी जीवन में इन आँखों से भारत को स्वतन्त्र होते हुए मैं देख सका, इसी में मुझे सब कुछ मिल गया। सच कहूँ तो मुझे और किसी अन्य सम्मान की आवश्यकता ही नहीं थी।"

छोटी बीमारी के बाद 21 अगस्त, 1981 को उनकी मृत्यु हो गई। वे मृत्यु को परम सखा मानते थे। मृत्यु के समय उनको जरा भी तकलीफ नहीं हुई। परम सखा मृत्यु को पाकर उनके मुँह पर बहुत प्रसन्नता छा गई थी जिसे देखकर उनके आप्तजन भी आश्चर्य चकित हो गये थे।

वे तो अपने परम सखा के साथ इस फानी दुनिया को छोड़कर अनन्त की यात्रा पर निकल गये परन्तु सनातन मूल्य रखनेवाले विपुल साहित्य की विरासत छोड़ गये हैं जो अनन्त काल तक हमें प्रेरणा देती रहेगी।

□

गांधीजी के निकट के साथी काकासाहेब कालेलकर

✍ **उमाशंकर जोशी**

आचार्य श्री काकासाहेब कालेलकर के खासकर दो स्वरूप भविष्य में आगे उभर आयेंगे। एक तो गांधीजी के एक निकट के साथीका स्वरूप और दूसरे गुजराती और हिन्दी भाषाओं के एक अग्रिम गद्यस्वामी का स्वरूप, सच पूछें तो ये दोनों स्वरूप एक-दूसरे पर आधारित हैं। गांधीजी के निकट न आये होते तो जन्म से मराठीभाषी काकासाहेब साबरमती की आश्रमशाला में मुख्यत: गुजराती भाषा बोलनेवाले बालकों को सिखाने के लिए उनकी भाषा सीखने में उनके साथ अद्भुत स्पर्धा में उतरकर गुजराती भाषा के एक उत्तम लेखक न बने होते, तथा जब गद्यसौन्दर्य की आभा से पाठक का मन हर लेते हैं-भर देते हैं तब भी उनकी नस-नस में रहे हुए गांधी विचार की धडकन का कम समर्थन नहीं है।

"गांधीवादी काकासाहेब" कहने के बदले "गांधीजी के निकट के साथी काकासाहेब" यह परिचय मैंने जान-बूझकर दिया है। गांधीजी की जीवनसाधना एक तरह से अनोखी साधना है। वह पूर्णविराम पर आकर पहुँची हुई साधना नहीं, किन्तु निरन्तर बढ़नेवाली जीवनयोग की साधना है। इसी लिए तो गांधीजी ने भारपूर्वक कहा : "सत्य की मेरी खोज में मैंने कई विचारों का त्याग किया है और कई नयी बातें सीखा हूँ। और इसीलिए जब मेरे दो लेखों के बीच विरोध जैसा मालूम हो, तब यदि उसे मेरे विचारों में श्रद्धा हो तो, एक ही विषय के दो वचनों में से आखिरीवाले को प्रमाणभूत माने।" अन्तिम वर्षों में सर्वोदय सम्मेलन के समक्ष उन्होंने 'गांधीवाद' जैसी कोई चीज नहीं है यह भी जोर-शोर से कहा।

गांधीजी को जो साथी मिले उन में दो वर्ग दिखते हैं-उनके विचारों के अनुसार प्रजा को नेतृत्व देनेवाला वीर स्वराज्य सेनानियों का एक वर्ग; दूसरा उनकी समग्र जीवन-साधना में से शक्य हो उतने अधिक-से-अधिक अंश अपने जीवन में उतारने का यत्न करनेवाले तथा उनके विशिष्ट जीवनयोग का भाष्य करने वाले मनीषियों का वर्ग, तीसरा एक महत्व का वर्ग भी है, जो गांधीजी को तो बहुत ही प्यारा था, समाज के मूल में तपस्या मय सेवा के रस का सींचन करके प्रजा को ऊपर उठाने वाला पू. ठक्कर बापा, पू. रविशंकर महाराज, पू. जुगतराम भाजी, पू. परीक्षित लाल जैसों का वर्ग। किशोरलाल मशरूवाला, विनोबा, काकासाहेब आदि मनीषी भाष्यकारों का कमोबेश तीसरे वर्ग में भी जोरदार कार्य था. राजाजी, जवाहर लाल, राजेन्द्र बाबू, कृपलानीजी आदि भाष्यकार मनीषी मुख्यत: पहले वर्ग के वीर सेनानी थे।

काकासाहेब को गांधीजी मिले या कहो कि गांधीजी को काकासाहेब मिले कविवर रविन्द्रनाथ के शांति निकेतन में से. दक्षिण अफ्रीका से गांधीजी आश्रम को समेट कर सारे मंडल के साथ स्वदेश आये तब इतने बड़े देश में उस फकीर को उतरने की जगह मिली दूसरे एक फकीर-कवि फकीर के यहाँ। गांधीजी के साथियों ने शांति निकेतन में सफाई का काम ले लिया। वहाँ के एक प्रोफेसर, तीस वर्षीय दत्तात्रय कालेलकर उस काम में उत्साह के साथ जुट गये. बा के बारे में बोलते काकासाहेब के शब्दों में-"कस्तूरबा के प्रथम दर्शन मुझे शांति-निकेतन में हुए 1915 के प्रारम्भ में जब महात्माजी वहाँ आये थे तब स्वागत समारंभ समाप्त होने के बाद लेटने की तैयारी हुआ। आंगन के बीचों बीच एक चबूतरा था। महात्माजी बोले, "हम दोनों इसी के ऊपर सो जायेंगे।" पास-पास बिछौना बिछाकर बापू तथा बा सोये, और हम सब आँगन में आसपास अपना-अपना बिस्तर बिछाकर सो गये उस दिन मुझे लगा कि हमें नये माँ-बाप मिल गये हैं।

काकासाहेब गांधीजी के साथ अहमदाबाद गये। आश्रम स्थापन के लिए जगह तय हुई जमीन को साफ समतल करने के लिए पहला फावड़ा काकासाहेब ने मारा था। आश्रम की शाला के तो वे प्राण समान थे ही। 1920 में गुजरात विद्यापीठ और उसी के विभाग रूप पुरातत्व विद्याभवन की स्थापना होते ही वहाँ उनकी सेवाएँ अनिवार्य हुईं। काकासाहेब संस्थाओं को और अधिकारियों को योग्य नाम देने में और उस तरह उसका रूप गढ़ने में अपूर्व सहायता देने वाले रहे...माध्यमिक शाला के लिए 'विनय मंदिर', वायस-चांसलर के लिए 'कुलनायक', रजिस्ट्रार के लिए 'महामात्र', ग्रेजुएट के लिए 'स्नातक', ऐसे तो अनेक पर्याय उनकी टकसाल में से निकलते ही रहते। आश्रम की सर्वधर्म प्रार्थना की सूक्तियाँ पसन्द करने की हों तो उसमें उनका सहयोग। जेल में से सत्य, अहिंसा आदि व्रतोंके बारे में गांधीजी ने हर सप्ताह लिखकर भेजे हुए छोटे-छोटे लेख 'व्रत-विचार' के नाम से सर्वप्रथम प्रगट हुए। हर मंगलवार को वे लिखे गये थे अत: काकासाहेब ने उनका सुन्दर नाम दिया 'मंगल प्रभात'।

गांधीजी के अंतेवासी, संगी-साथी, सह-कार्यकर्ता बनना यह आसान कसौटी नहीं हो सकती. एक समय विद्यापीठ में गांधीजी आये थे तब सामने आचार्य काका साहेब को जमीन पर दाहिना पैर मोडकर उस पर बैठकर बायें पैर को खडा मोडकर घुटने पर दोनों हथेली रखकर सेवा के लिए तत्पर, उत्सुक, एकाग्र सेवक के रूप में देखा था। गांधीजी बड़े सेवा लेने वाले (टास्क मास्टर) उनके पास आश्रमों में रहने वाले कोई-कोई तो सख्त तप त्याग से तपाये हुए भी देखने को मिलते। किन्तु महादेव भाई देसाई जैसों की मूर्ति देखें तब प्रतीति हो जाती थी कि गांधीजी ऐसी अग्नि है कि जिसकी मंगल ज्वालाओं के बीच प्रफुल्ल दल कमल भी विकसित हो सकता है। काकासाहेब का व्यक्तित्व खूब खिला। काकासाहेब के जीवन की सुवर्ण घड़ी (हिज फायनेस्ट अवर) शायद गांधीजी को 1922 में जेलवास मिला उसके बाद दिखाई देती है। गांधी जी का 'नवजीवन साप्ताहिक' चलाने का और प्रजा के जोश को टिकाने का बढाने का आह्वान आते ही काकासाहेब पूर्ण कला से विकसित हुए ऐसा दिखता है। महादेवभाई देसाई के वचन साक्षी हैं–गांधीजी जेल गये तब तक अपनी इस बोलने की शक्ति का भी वे संचय करते थे। गांधीजी के जाने के बाद मानो कोई चारा ही न हो वे बाहर आये। उसके बाद विचारों का कोई ज्वालामुखी फूट पड़ा हो ऐसा असर गुजरात पर हुआ ऐसा मैं जहाँ गया वहाँ सुना है।" उस समय काकासाहेब के अन्दर एक तरह का पैगम्बरी आवेश फूट पड़ा था।

युद्ध का मोर्चा काकासाहेब ने सुन्दर संभाला लेकिन गांधीजी के भाष्यकार के रूप में प्रकट होते उनको जरा सी बाधा नहीं हुई। उन दिनों उन्होंने एक छोटी-सी अंग्रेजी पुस्तिका प्रकाशित की थी–"द गोस्पेल ऑफ स्वदेशी" (स्वदेशी का संदेश)। 1923 में प्रसिद्ध फ्रेंच उपन्यासकार-विचारक रोम्याँ रोलाँ ने 'महात्मा गांधी' नाम की पुस्तक में उनकी मानव जाति के लिए किये गये नैतिक-आध्यात्मिक कार्यों की समीक्षा की। उसमें उन्होंने काकासाहेब की पुस्तिका की चिकित्सा की। गांधीजी ने प्रस्तावना लिखकर उस पर अनुमति की मोहर दी थी उसकी आलोचना की।

राष्ट्रवाद संकुचित बनाने वाला है इसके बारे में कविवर टैगोर तथा गांधीजी के बीच चर्चा चली थी। गांधीजी का कहना था कि आसपास करोड़ों लोग भूखे हो और उनका चुराकर मैं खाता हूँ तब कुछ नहीं तो कोई उत्पादक शरीर-श्रम उदाहरणत: कताई का- मुझे करना ही चाहिये। रोम्याँ रोलाँ के पास इस का जवाब नहीं, किन्तु कविवर की ओर नरमी दिखाते हुए बल्कि दोनों के बीच समान भूमिका ढूँढ़ते हुए काकासाहेब का निबंध उनकी झपट में आ जाता है। सहयोगी संकीर्ण मन के हो सकते हैं और मूल पुरुष के आदर्श तक पहुँचने की शिस्त को ही आदर्श मानने की भूल कर बैठ सकते हैं ऐसा रोम्याँ रोलाँ कहते हैं। काकासाहेब का उद्धरण इस तरह वे देते हैं। स्वदेशी का सच्चे रूप में अनुसरण करने वाला नहीं भूलता कि प्रत्येक

मनुष्य उसका भाई है, लेकिन इतना ही उसे देखना है कि उसके आस-पास की परिस्थिति ने जो कार्य उसके लिए तय कर रखा है उसे सफल करने का भार उस पर है। जैसे जिस शती में हम जीते हैं उसमें रहकर अपनी मुक्ति हमें हासिल करनी चाहिये उसी तरह जिस देश में हमारा जन्म हुआ उसकी सेवा हमें करनी चाहिये। संकुचित राष्ट्रवाद की कविवर तथा रोम्याँ रोलाँ की भीति को गांधीजी के एक उद्‌गार से ठोस उत्तर मिल जाता है। उन्होंने कहा था–"My nationalism is internationalism in Practice" मेरा राष्ट्रवाद अमल में और प्रत्यक्ष आचरण में रखा हुआ, आन्तर्राष्ट्रीय वाद है। रोम्याँ रोलाँ के न्याय की खातिर यहाँ कहना चाहिये कि उन्होंने नोट में यह भी लिखा है कि काकासाहेब की पुस्तिका में महान नैतिक प्रभाव वाले वचन हैं तथा हिमनदियों की शीतल पवित्रता उनके पन्नों में छाई हुई है। चार वर्ष के बाद काकासाहेब का पत्र मिलने पर रोम्याँ रोलाँ ने अपनी सन् 1927 की डायरी में लिखा है कि मैंने प्रत्युत्तर दिया (मार्च 17) और विनती की कि "उनके बारे में की हुई मेरी गैर वाजिब टीका के लिए मुझे क्षमा करें।" खास कहने योग्य तो यह है कि काकासाहेब ने कभी भी इस बात को जाहिर नहीं किया। अभी-अभी भारत सरकार के (Romain Rollan and Gandhi, Correspondence) पुस्तक में (पृष्ठ 84) में यह बात प्रगट हुई है।

काकासाहेब को मैं 1931 में गांधी-इर्विन समझौते के समय मिला और विद्यापीठ में छह महीने उनके सान्निध्य में रहा। 1930 की डांडी कूच के बाद महाविद्यालय का काम तो बन्द हो गया था। मेरे जैसे उस समय के कॉलेज जनों को भी ऐसा पूर्वाग्रह था कि विद्यापीठ में खादी काम तथा रचनात्मक कामों को अग्रिमता देकर देश के उस समय के एक तेजस्वी विद्या केन्द्र की कीर्ति को समेट लिया है। ऐसा करने में महान अध्यापकों के साथ-साथ रामनारायण वी. पाठक, रसिकलाल छो परीख जैसे यहाँ के नवीन विद्वानों को संस्था छोडकर जाना पडा ऐसा करने में काकासाहेब सहाय भूत हुए। मेरे जैसों का ऐसा पूर्वाग्रह भी सच कहूँ तो काकासाहेब की मृत्यु के बाद आखिरी दो-तीन साल से नाबूद हुआ, गांधीजी के उस समय के मनोमंथन समझने का प्रयास करते हुए। लायब्रेरी की स्थापना हुई तब गांधीजी ने कहा था कि ऑक्सफोर्ड की बॉडलियन लायब्रेरी से तनिक भी कम नहीं चलेगी। गुजरात विद्यापीठ को एक महान विद्याधाम के तौर पर विकसित करना था। किन्तु गांधीजी तो महाभारत में कहा गया है वैसे 'सर्वमेघ महायज्ञ' की-अपने पास का सब कुछ होम देने की तैयारी वाले। विद्यापीठ को राष्ट्रोत्थान कार्य की एक छावनी बनाये बिना चारा नहीं था। काकासाहेब ने उनको व्यक्तिगत तौर पर अप्रिय होने की संभावना के बावजूद भी स्वधर्म बुद्धि से मुक्त मन से जो साथ दिया वह गांधीजी के कार्य की उनकी गहरी समझदारी और उनके प्रति उनकी भक्ति की गवाही देता है।

गांधीजी ने गुजरात छोड़ने का तय किया। आश्रम की अपनी लायब्रेरी नई म्युनिसिपल लायब्रेरी को उन्होंने भेंट दी। बन्द विद्यापीठ का पुस्तकालय भी म्युनिसिपैलिटी को देने की बात काकासाहेब ने गांधीजी के समक्ष रखी, और वह भी भेंट में दी गई। इसमें सब ट्रस्टियों को पूछकर इजाजत प्राप्त करने का संवैधानिक औचित्य का पालन नहीं हुआ। काकासाहेब ने भी गुजरात छोड़ा।

गांधीजी सेवाग्राम जाकर रहे तब वर्धा तथा सेवाग्राम के बीच काकावाड़ी में काकासाहेब रहे। ताजी ताडी (नीरा) पीना अच्छा है ऐसा गांधीजी ने सूचित किया तब प्रयोग करने वालों में काकासाहेब भी थे। किसी कारण वे बड़ी बीमारी में फंस गये ओर मुश्किल से बचे। गांधीजी की नयी तालीम के विचार-प्रचार में काकासाहेब का कीमती योगदान रहा तथा नागरी और उर्दू मे भी लिखी जाने वाली दिल्ली मेरठ के आसपास के प्रदेश में बोली जाने वाली हिन्दुस्तानी भाषा–जिसका उत्तम नमूना राजेन्द्र बाबू की आत्मकथा को मैं मानता

हूँ–उसके प्रचार में आपने समय दिया, "सब की बोली", 'सर्वोदय' और बाद में 'मंगल प्रभात' का हिन्दी में संपादन करते रहे। प्रकृति वर्णनों में उनकी हिन्दी भी अपने निजी सौन्दर्य से बीच-बीच में चमके बिना नहीं रहती।

काकासाहेब ने प्रत्यक्ष गाँव में जाकर प्रवृत्ति चलाई नहीं है, किन्तु उनसे प्रेरणा, सतत मार्गदर्शन तथा उष्मा पाकर कई युवक अलग-अलग स्थान पर कार्यरत हैं; थामना में बबल भाई मेहता (अब नहीं रहे)। महाराष्ट्र-कर्नाटक में मुरलीधर घाटे, नागालैंड के चू-चू इम्लांग में नटवर ठक्कर, जापान में नरेश मंत्री।

स्वराज्य के बाद पिछड़ी जातियों की जाँच के लिए आयोग नियुक्त किया गया तब जवाहरलाल जी तथा राजेन्द्र प्रसादजी ने काकासाहेब को उसका अध्यक्ष मनोनीत किया। उस आयोग की रिपोर्ट पर सद्भाव कायम रहे इसलिए आपने दस्तखत किये हैं और विरोध-टिप्पणी नहीं लिखी है, किन्तु प्रस्तावना के रूप में राष्ट्रपति के नाम लिखे गये पत्र में अनेक विचार आपने दिये हैं। काकासाहेब के पत्र के कई मंतव्य बदलते संयोगों में शायद कुछ पुनर्विचार मांगे, लेकिन एक-दो का उल्लेख यहाँ कर सकते हैं। उन्होंने अनुसूचित किये हुए उत्तर प्रदेश के उच्च वर्ण के 'अजगर' (यानि अहीर, जाट, गुजर, राजपूत) के अनुसंधान में गुजरात की पिछडी जातियों के 'खाम' का सहज स्मरण होता है। कई जातियों के समुदायों को राजकीय वर्चस्व को प्राप्त करने के साधन के तौर पर उपयोग किया जा सकता है ऐसा निर्देश उन्होंने किया है। काकासाहेब का एक निरीक्षण नोट करने लायक है। पिछड़े वर्गों को परेशान करने में उनके वर्ग के ही कई लोग बड़ा हिस्सा लेते हैं। अत: उनका सूचन है कि पछात् वर्गों में से जो आगे बढ़ चुके हों उनकी सफेद पोश लोगों के साथ लड़ने की शक्ति बढ़े साथ-साथ यह देखना चाहिये कि अपने ही वर्ग के लोगों को परेशान करने की उनकी शक्ति घटे। राष्ट्रपति को लिखे हुए उस प्रस्तावित पत्र में काकासाहेब ने एक क्रांतिकारी लगने वाला सूचन किया है कि मैला उठाने का काम करने वाले वर्ग के विद्यार्थियों को हॉस्टेल में तुरन्त ही जगह देने का प्रबन्ध करना चाहिये ऐसा उग्र कदम जल्दी नहीं उठाया जायेगा तो इस प्रश्न को हल करने को समाज टालता ही रहेगा।

एक युवक ने कुछ जोश से काकासाहेब से कहा, "गांधीजी के साथ जुड़कर आपने अपनी मौलिकता खो दी।" काकासाहेब का उत्तर सुनकर हम ठंडे हो गये–"मैंने अपनी सारी मौलिकता गांधीजी को खोजने में खर्च कर दी है।"

काकासाहेब कला प्रिय, सौन्दर्य प्रिय, शैलीकार, मर्मज्ञ मनुष्य, रवीन्द्रनाथ के शांतिनिकेतन तथा ग्रामोत्थान के लिए स्थापित हुए श्री निकेतन की साधना का संस्पर्श जीवन भर उन्होंने महसूस किया। एक बार गुरुदेव ने गांधीजी से कहा–"महात्मा जी आप दत्तू बाबू को ले गये फिर वापिस करने की बात ही नहीं करते।"

काकासाहेब को हम गांधीजी के आदमी कहें उतने ही रवीन्द्रनाथ के भी कहने पड़ेंगे। दोनों का उनका दर्शन उन्हीं के शब्दों में देखें–"इन दोनों के सहवास में रहने का और उनके हाथ के नीचे काम करने का भाग्य मुझे मिला है। दोनों के स्वभाव में, कार्य-पद्धति में तथा कार्य क्षेत्रों में बहुत बड़ा अन्तर था" इतना अंतर होते हुए भी काकासाहेब जितने गांधीमय हैं उतने टैगोरमय हैं। वे कहते हैं–"दोनों के चारित्र्य में उनके जीवन के आदर्शों में तथा उनके युग-कार्य में अद्‌भुत साम्य था। इस साम्य को देखकर मुझे कई बार लगता है कि भगवान ने अपने कार्य के दो विभाग करके इन दोनों विभूतियों के हाथों में सौंप कर उनके द्वारा अपना ही एक युग कार्य सम्पन्न करवाया।"*

* ता. 11-8-85 को आकाशवाणी अहमदाबाद परसे प्रसारित गुजराती 'बुद्धि प्रकाश' से साभार. गुजराती से अनुवाद : कु. सरोजिनी नाणावटी।

□

गुजरात की हिन्दी सेवा

✍ न. अं. व्यास

महाराष्ट्र और गुजरात के कई साहित्यिकों ने न केवल अपनी भाषा में, अपितु ब्रजभाषा हिन्दी में भी साहित्यसर्जन किया है। 'काव्यं यशसेऽर्थकृते' या ऐसा कोई उनका भव्य एवं उदात्त हेतु न था। 'स्वान्तः सुखाय' अपने भक्त हृदय अनुभूतिमय संवेदनों को अभिव्यक्त करने के लिये ही उन्होंने उत्तमोत्तम ग्रंथों का प्रणयन किया है। महाराष्ट्र के नामदेव, एकनाथ, तुकाराम, केशवस्वामी व अमृतराय और गुजरात के भालण, अखो, दयाराम, दलपतराम, ब्रह्मानन्द और धीरो विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस निबन्ध में केवल गुजरात की हिन्दी सेवा पर ही विस्तृत रूप से विचार किया जाएगा।

मध्यकालीन गुजरात में साहित्यिक जनसमुदाय व मन्दं यशः कवि प्रार्थी, महाकवि नन्ददासजी की 'मानमंजरी' और 'अनेकार्थमंजरी' से काव्य अभ्यास का प्रारम्भ करते और धीरे-धीरे सुन्दरशृंगार, कविप्रिया, रसिकप्रिया, छन्दशृंगार, भाषा भूषण, बिहारी सतसई वृंद सतसई और जसुराम कृत राजनीति इत्यादि ग्रन्थ पढ़ते।[1] वृद्ध होने पर सुन्दर विलास, तुलसीकृत रामायण, योगवाशिष्ट इत्यादि पढ़ते। भड़ोच (गुजरात) के वणिक् गृहस्थ कृत 'उपदेशबावनी' या किसनबावनी भी पढ़ी जाती थी।

अब हमारे समक्ष यही प्रश्न आता है कि अहिन्दी-प्रदेश में भी हिन्दी के ऐसे उच्च व महत्त्व के स्थान के क्या कारण हो सकते हैं? उस समय की साहित्यिक भाषा ही ब्रजभाषा थी। रियासतों के राजा महाराजा, कवि, बारहट्ट, चारण इत्यादि का पोषण करते थे। और ये कविजन राजा की प्रशंसा हिन्दी भाषा, चारणी भाषा या डिंगल में ही करते थे। राजा की प्रशंसा के कवित्तों या छंदों के अतिरिक्त अन्य विषय के काव्य भी वे इतनी ही निपुणता से एवं कलामयता से करते थे। ये बारहट्ट पिंगलशास्त्र और डिंगल पर पर्याप्त प्रभुत्व रखते थे और सुयोग्य कविजनों के कई वर्षों तक शिष्य रह चुके थे। सौराष्ट्र के अनेक राजा भी ब्रज भाषा में प्रवीण थे। रस, अलंकार, नायक-नायिका भेद इत्यादि संस्कारी ज्ञान के लिये भावनगर के विजयसिंहजी प्रसिद्ध थे। श्री वल्लभ-सम्प्रदाय के आगमन के साथ वैष्णवों की ओर से भी ब्रजभाषा को उत्तेजन मिला। मन्दिरों में कीर्तन भी इसी भाषा में होते। इस तरह कई शताब्दियों से ब्रजभाषा का प्रचार होने से अनेक मनुष्य इससे परिचित थे। और गुजरात के कई प्रसिद्ध कवियों ने ब्रजभाषा हिन्दी में भी काव्य लिखे हैं।

गुजराती आख्यान काव्यों के जनक एवं संस्कृत भाषा निपुण 15वीं सदी के सुप्रसिद्ध कवि भालण के दशमस्कंध में ब्रजभाषा के पद मिलते हैं। गुं.विं. सभा, अहमदाबाद की दशम की प्रति में ब्रजभाषा के पद हैं। वे शायद भालण के न भी हों पर भालण की छाप वाले पद तो भालण के ही हैं। भालण के पद मधुरता, प्रासादिकता एवं भावाभिव्यक्ति में सूरदास के पदों से कम नहीं है। उदाहरण के लिए उनका निम्नलिखित पद देखिए-

कोन तप कीनोरी माई नंदराणी। कोन.
ले उछंग हरिकुं पय पावत, मुख चुंबन मुख भी नो री॥
तृप्त भये मोहन ज्युँ हसत हैं तब उमगत अधरहु की नो री।
जसोमती लटपट पूँछन लागी, बदन खेवित बलि नोरी॥
रिदे लगाय बरजु मोहि तुं कुलदेवा दी नोरी।
सुन्दरता अंग अंग कए बरनु तेज ही सब जग ही नो री॥

1. गुजराती-हिन्दी साहित्यमां आपेलो पालो श्री डाह्याभाई देरासरी।

अंतरिख सुर इन्द्रादिक बोलत वृजजन को दुख की नो री।
इह रस सिंधु गान करी गाहत भालन जन मन भी को री॥

मध्यकाल तक तो गुजराती और पश्चिमी हिन्दी भाषा एक ही थी। इसीलिए डॉ. टेसिटोरीने प्राचीन गुजराती को ही Old Westesn Rajasthani पुरानी पश्चिमी हिन्दी नाम दिया था। राजस्थान को ही नहीं, पर सारे हिन्दी जगत् को प्रोज्वल कवयित्री मीराँबाई गुजराती भाषा की भी इतनी ही महान् कवयित्री मानी जाती है। राजस्थानी मीराँ जीवन के अंतिम वर्षो में द्वारका (गुजरात) आकर गुजराती भाषा की महान् कवयित्री भी हो गई है। मीराँ के बहुत से पद ऐसे हैं जो हिन्दी और गुजराती–दोनों भाषाओं में बहुत कम फर्क के साथ मिलते हैं। उनके कई पद केवल हिन्दी में ही मिलते हैं तो कई पद ऐसे भी हैं जो केवल गुजराती में ही मिलते हैं। "राम रमकडुं जड़ी गुरें, राणाजी मने राम रमकडु जड़ीयु" और "बोल मा बोल मा बोल मारे राधाकृष्ण विना बीजुं बोल मारे" उनके प्रसिद्ध गुजराती पद हैं। "म्हाँ ने चाकर राखोजी गिरधारीलला चाकर राखोजी" पद थोड़े परिवर्तन के साथ गुजराती में भी है। मीराँ को अहिन्दी भाषी मानने का निन्द्य प्रयास मैं नहीं कर रहा हूँ पर हिन्दी के सामान्य विद्यार्थी से लेकर महापंडितों को भी स्वीकार करना ही होगा कि मीराँ गुजराती भाषा की भी वह प्रौज्वल ज्योतिर्मय कवयित्री है जिनका स्थान यावच्चंद्रदिवाकरौ तक अमर है। मीराँबाई के ग्रन्थों से आप सब सुपरिचित होने से इस विषय पर विशेष पिष्टपेषण करना उचित नहीं समझता। मीराँबाई की हिन्दी कविता को हिन्दी भाषी गुजरात की हिन्दी सेवा के अंतर्गत आने देंगे या नहीं यह एक प्रश्न हो सकता है। पर हम नहीं समझते कि ऐसा करने में कुछ अयोग्यता है।

सत्रहवीं शताब्दि के दादुदयाल ने भी हिन्दी में कई पद लिखे हैं। अहमदाबाद निवासी इस महात्मा का पंथ 'दादु पंथ' के नाम से प्रसिद्ध है। वे महान् उपदेशक थे और उनके शिष्यगण में से सुन्दरदास, रज्जवजी, जनगोपाल, जगन्नाथ, इत्यादि ने भी अच्छे काव्य लिखे हैं। हिन्दी कवियों में भी उनका स्थान बहुत ऊँचा माना जाता है और 'सन्त बानी संग्रह' में 'दादूदयाल की बानी' अत्यंत प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय है। उन्होंने कबीर और नानक की कक्षा की ज्ञानमार्गीय और रहस्यमार्गीय कविता 17वीं शताब्दि के पूर्वार्ध में देकर हिन्दी कवियों में उच्च स्थान प्राप्त कर लिया था। ब्रजभाषा के अष्टछाप सूरदासादि आठ कवियों में से कृष्णदास गुजरात के पटेल (पाटीदार) थे।[2]

सत्रहवीं सदी के अहमदाबाद के सोनी भक्तकवि अखा या अखा जी ने भी वेदान्त जैसे गंभीर विषय पर अनेक काव्य लिखे हैं। उनके काव्यों में मधुर एवं प्रसादगुण की न्यूनता है। पर उनसे काव्यों के संबंध में गुजरात के अग्रिम आलोचक श्री नरसिंहराव दीवेटिया ने ठीक हो कहा है कि 'Where Akho is Simple, he is Sublime.'। उनको बानी शीघ्र ही तीव्र प्रभाव उत्पन्न करने की क्षमता रखती है कई पदों के अतिरिक्त उन्होंने सन्तप्रिया और ब्रह्मलीला नामक काव्यों की रचना भी हिन्दी में की है। निर्गुण भक्ति की अभिव्यक्ति करता उनका एक पद देखिए–

ज्ञान घटा चढ़ आई, अचानक ज्ञानघटा चढ़ आई। टेक
अनुभव जल बरखा बड़ी बुंदन, कर्म की कीच रेलाई॥
दादुर मोर शब्द संतन के, ताकी शून्य मीठाई।
चहुदा चित्त चमकत आपनपों, दामिनी सी दमकाई॥
घोर घोर घन गर्ज घेहेरा, सतगुरु सेन बताई।
उमगी उमगी आवत है निशदीन, पूरब दिशा जनाई॥
गयो ग्रीसम अंकुर उगी आये, हरिहर की हरि आई।
शुक सनकादिक शेष सहराये, सोई अखा पद पाई॥

उनके काव्य ओजस् गुण से परिपूर्ण है और जाह्नवी के प्रवाह की तरह उनके काव्य का प्रवाह

2. गुजराती साहित्यनुं रेखादर्शन खंड 1 पृष्ठ 192।–श्री के.का. शास्त्रीजी

धीरता, गंभीरता एवं प्रसन्नता से आगे बढ़ता ही जाता है। 'सन्तप्रिया' में कवि का कथयितव्य है कि "गुरु गोविन्द, गोविन्द सोही गुरुः गुरु गोबिन्द गने नहि न्यारा" इस काव्य में ज्ञान की भी भूरिभूरि प्रशंसा की गई है और वेदान्त के तथ्यों का निरूपण भी सुचारुरूपेण किया गया है। वेदान्तविषयक 'ब्रह्मलीला' काव्य में सगुण ब्रह्म, निर्गुण ब्रह्म, पुरुष, प्रकृति इत्यादि का वर्णन किया गया है। तुलसीदास एवं सूरदास की विशुद्ध भक्ति से भरी हुई और शृंगार के भार दबती जाती हिन्दी कविता के समय में यदि अखाजी का प्रभाव पड़ता तो बहुत ही अच्छा होगा।

सत्रहवीं सदी के ही विश्वनाथ जानी का 'प्रेमपच्चीशी' काव्य विविध छंदों में रचा गया है। इसमें 17वाँ पद ब्रजभाषा में लिखा हुआ है। गुजराती काव्यों में बीच-बीच में ब्रजभाषा के पद रखने का कवि संप्रदाय बहुत पुराना है। भालण के समकालीन 'कृष्ण क्रीड़ा काव्य' के कर्ता कायस्थ केशवदास ने भी अपनी कृति में ब्रजभाषा के कई सुन्दर पद रखे हैं।[3]

गुजराती मध्यकालीन साहित्य के अमर ज्योतिर्धर कवि सम्राट् प्रेमानन्द ने भी आरम्भ में हिन्दी में ही काव्य रचने का प्रारम्भ किया था, परन्तु तदनंतर उन्होंने अपनी मातृभाषा गुजराती में ही काव्य लिखे। हिन्दी में काव्य न लिखने का कारण हिन्दी के प्रति उसका न द्वेष न था, पर वह चाहता था कि जैसा अन्य भाषाओं का साहित्य है वैसा ही मेरी मातृभाषा में क्यों न हो? ऐसी हठ प्रतिज्ञा से ही वह विपुल प्रमाण में साहित्य का सर्जन कर सका।

17वीं सदी के ही सामलभट्ट ने अपने गुजराती काव्य 'अंगद-विष्टि' में कई संभाषण हिन्दी में ही करवाये हैं। रामायण की 'अंगदविष्ट' का प्रसंग तो अत्यन्त लोकप्रिय है। अंगद और राम एवं अंगद और रावण के बीच के कई संवाद हिन्दी में ही है। थोड़े उदाहरण देखना अनुचित न होगा–

छप्पय

अंगद– कहा मूरख से मेल। कहा काया बिन माया।
कहा रंक से रुड, कहा सेना बिन राया।।
कहा नपुंसक सु नार। अपगंसु कहा अटारी।
कहा दरिद्र को दाम। कहा परस्त्री से यारी।।
पुनि कहा कुदस को कूटनो। कहा पंडित सों पारसीं।
कहा रावन को रीझबन। ज्यों अन्धे आगे आरसी।।20

सोरठा

राम– राम कहे सुन बीर, धीर बड़े ज्यौं हारीए।
जो लों मेर गुड़ खीर, तो लों विष न मारीए।।21

'अंगदविष्टि' का प्रसंग डिंगल के उपयुक्त ही वीररस से परिपूर्ण है। और ऐसे कई-कई निर्व्याज मनोहर सोरड़े छप्पय तथा कवित्त इस काव्य में मिलते हैं।

गुगली जाति का ब्राह्मण मुकुन्द द्वारिका में रहता था और उसने केशवानन्द नामक व्यक्ति से हिन्दी साहित्य के ग्रन्थों का अभ्यास किया था। बहत-काव्य दोहन भाग में उनके दो हिन्दी ग्रन्थ देखकर यह प्रतीत होता है कि उसने हिन्दी साहित्य का पर्याप्त अध्ययन किया होगा। संवत् 1708 के वर्ष में उसने भवनमाला (ब्रह्मज्ञानी 10 भक्तों के चरित्र की पुस्तक) लिखने का प्रारम्भ किया था। कबीर को सर्वश्रेष्ठ मान कर उसका चरित्र सर्वप्रथम लिखा गया है।

अहमदाबाद के ब्राह्मण कवीश्वर दुलपनिराय और वणिक् बन्शीधर ने संवत् 1792 में 'अलंकार-रत्नाकर' नाम का ग्रन्थ बनाया था। उन्होंने 'उदयपुर' के जगतसेन के नाम पर पर यह ग्रन्थ लिखा है। वे उदयपुर के नरेश जगनसिंह के आश्रित

3. डॉ. सांडेसरा संपादित 'सत्तारमा शतकनां प्राचीन गूर्जर काव्य' पृष्ठ 31

कवि थे। उन्होंने कुवलयानन्द ग्रन्थ का आधार लेकर भाषाभूषण की पूर्ति के स्वरूप में इस ग्रन्थ की रचना की है। अपने काव्यों के उदाहरणों के अतिरिक्त इन्होंने अन्य कवियों के काव्यों से भी उदाहरण दिए हैं। अलंकार-रत्नाकार में जरावनसिंह महाराज रचित भाषाभूषण की एक प्रकार की टीका ही है। इन दोनों कवियों की कविता अत्यन्त मनोहर, प्रासादिक, कोमल एवं मधुर थी। देखिए।

रहै सदा बिकसित बिमलधरे बास मृदु मंजु।
उपज्यो नहिँ पुनिपंक ते प्यारी तब मुख कंजु।।

कवीश्वर केवलरामजी ने संस्कृत और ब्रजभाषा का अच्छा अभ्यास किया था। उनका जन्म संवत् 1756 में हुआ था। उन्होंने 'बाबीविलास' नामक ऐतिहासिक काव्य लिखा है।[4] उनके पुत्र आदितरामजी ने भी हिन्दी अच्छे पद लिखते हैं।

संवत् 1767 के आश्विन सुद 10 के दिन पूर्वाश्रम के किशनदास नामक जैन-साधु कवि ने जैनधर्म दीक्षित अपनी बहन रतन बाई के निमित्त 'किशनबावनी' नामक छोटासा काव्य लिखा है। कवि ने तो अपने काव्य-ग्रन्थ का नाम उपदेश बावनी ही रखा था, पर जनसमुदाय में यह काव्य 'किशनबावनी' नाम से ही विख्यात है। काव्य के संबंध में कवि कहता है कि यह काव्य मैंने मेरे जैन मतानुसार नहीं, परन्तु वेदान्तमतानुसार लिखा है।[5] इस काव्य में कवि ने प्रथम जैन-सूत्र "ॐ नमः सिद्धम्" इस प्रत्येक अक्षर से आरम्भ होते कवित्त बनाकर, इसके बाद के कवित मूलाक्षर के क्रम में लिखे हैं। इस काव्य की भाषा प्रभावोत्पादक, वेगवती और मनोवेधक है।

काशी निवासी गुजराती ब्राह्मण हरिनाथ ने संवत् 1826 में अलंकार-दर्पण नामक ग्रन्थ लिखा है। इसमें लक्षण, उदाहरण इत्यादि समझाये गये हैं। उन्होंने पृथीशाह मुहम्मदशाह संबंधी ऐतिहासिक ग्रन्थ भी लिखे हैं। इसकी ब्रजभाषा सामान्यतः अच्छी है।

गुजरात की हिन्दी सेवा में साहित्यिक बल व काव्यगत सौंदर्य से प्रथम पंक्ति का स्थान प्राप्त करने वाले भवन कवि दयाराम का जन्म इ.सं. 1823 में हुआ था। गुजराती के अतिरिक्त उनकी हिन्दी कविता भी सर्वोत्कृष्ट है उनकी हिन्दी भाषा केवल ब्रजभाषा नहीं है। भारतवर्ष की बार बार यात्रा करने से भारत की अनेक बोलियों के शब्द उनकी ब्रजभाषा में पाये जाते हैं। हिन्दी में उन्होंने अनेक पद लिखे हैं। उनके 'सतसैया' की भाषा कठिन है। उनके कविता संबंधी विचार थे कि काव्य सरल न होने चाहिए-"धुर्ग, काव्य, कुश्मांडु, कुच, उख, कठोर त्यौं सार"

दयाराम ने हिन्दी में 40 के लगभग ग्रन्थ लिखे हैं। इन सभी में 'सतसैया' सर्वश्रेष्ठ रचना है। श्री ब्रजरत्नदास ने अपने खड़ी बोली हिन्दी साहित्य का इतिहास में दयाराम के बारे में लिखा है कि "ये गुजराती कवि थे, पर भारत भ्रमण से इनकी दृष्टि सार्वदेशिक हो गई और इनके उद्‌गार राष्ट्रभाषा हिन्दी में काफी निकले, जो इन्हें भारत-व्यापी भाषा ज्ञात हुई। इन्होंने दोहों-छंदों के सिवा गेय पद भी लिखे, चित्रकाव्य रचे तथा रसशास्त्र पर भी कविता की। ये अत्यन्त भावुक भवन कवि थे और गुजराती के कवियों में तो इनका स्थान बहुत ऊँचा है। हिन्दी की मुख्य रचनाएँ सतसैया, वस्तु-वृन्द दीपिका तथा श्रीमद्‌भागवत की अनुक्रमणिका है।"

उन्होंने ब्रजभाषा में कई अन्य ग्रन्थ भी लिखे हैं। पर वे या तो अपूर्ण हैं या अप्राप्य है। उन्होंने धार्मिक, उपदेशात्मक और शृंगारिक-प्रत्येक विषय के काव्य लिखे हैं। उनकी हिन्दी कविता के कुछ उदाहरण-

खरक सँवारो कर भरे, गोबर छुट उर छोर।
एहे बड़को बाल तुम, ठांकिय नंद किसोर।।
(सतसैया, दोहा सं. 171)

---

4. गुजराती ओ ए हिन्दी साहित्यमां आपेलो फालो डेरासरी
5. वही।

"हे नन्दकिशोर, मेरे हाथ तो गोबर में हो रहे हैं। मेरे उर पर का वस्त्र हट गया है। अभी कोई बड़ा आदमी इधर से आ निकलेगा, तुम तो बालक हो, जरा इसे ढँक दो।"

मुदिता नायिका का वर्णन–

"कान कहि जो कान में, कानन में कहि कान।
का 'न' कहती वहाँ अली, आ 'न न' भाव न जान।।

"हे श्री कृष्ण, जो बात तुमने अब कान में कही वह एकान्त कानन में क्यों न कह दी? श्री कृष्ण ने कहा, "हे आली। क्या तू 'न' नहीं कहती?" नायिका ने कहा, हे चतुर शिरोमणि! क्या तुम स्त्रियों के 'न' का भाव भी नहीं समझते?

हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि बिहारी ने केवल लौकिक शृंगार गया है जब कि दयाराम का शृंगार अलौकिक है।[6]

पिंगल शी गठवीं ने 'वैकुंठ पिंगल' नामक ग्रन्थ लिखा है। संवत् 1737 के श्रावण सुद् पंचमी और मंगलवार के दिन राजकोट (सौराष्ट्र) के जाडेजा राजकुमार महेरामणसिंह जी और उनके छ मित्रों ने 'प्रवीणसागर' नामक उत्तम ग्रन्थ की रचना की है। 'महेरामण' शब्द का का अर्थ समुद्र सागर है। इस पर से इस ग्रन्थ का नाम सागर और ग्रन्थ के प्रकरणों का नाम 'लहरें' रखा गया। इस ग्रन्थ की कुल 4 लहरें जानने में आई हैं। प्रवीण सागर काव्य-ग्रन्थ की अपूर्वता ग्रन्थ की वस्तु संकलना, रसिकता और वर्णित लोकोपयोगी विषयों से सभी आकर्षित हुए।

यह ग्रन्थ अपूर्व होने पर भी शब्दालंकार से विशेष रूप से अलंकृत होने से कविता कई जगह क्लिष्ट हो गई है। कच्छ-सौराष्ट्र के जनपदीय एवं प्रादेशिक शब्दों का भी काफी प्रयोग लेखक ने किया है। तुलसीदास और सूरदास जैसे हिन्दी महाकवियों की तरह इस कवि के काव्य की भाषा शुद्ध नहीं है। इस अपूर्ण ग्रन्थ को दलपतराम ने पूरा किया था।

6. मोदी कृत 'दयाराम'

'प्रवीणसागर' की भाषा और रचना पर सम्मति के लिये इसकी एक एक प्रति गोकुल, मथुरा, वृन्दावन के गोसांई महाराजाओं और काशी के पंडितों को भेजी गई थी। व्रजवासी गोसांई ने ग्रन्थ देखकर अभिप्राय दिया कि "ग्रन्थ की संकलना और काव्य रचना अद्वितीय एवं अतिरसिक है; तथापि ग्रन्थ की भाषा को ब्रजभाषा का नाम नहीं दिया जा सकता क्योंकि कच्छी और गुजराती भाषा के कई शब्दों का अर्थ कोई संस्कृत या ब्रजभाषा कोष के आधार से भी ब्रजभाषा का विद्वान नहीं कर सकता। अत: यह ग्रन्थ ब्रजभाषा का है– ऐसा प्रमाण पत्र हम नहीं दे सकते। तात्पर्य कि ऐसा उत्तम रसिक ग्रन्थ संकर ब्रजभाषा में लिखा गया है। काशी के पंडितों ने तो मनुष्य प्रेम की इस ग्रन्थ में रचना है ऐसा कह कर इसका सम्पूर्ण अनादर किया था और इसी कारण से उत्तर काल की हिन्दी में इस ग्रन्थ की प्रतिष्ठा नहीं हुई।

हिन्दी के बहुत से इतिहासकारों ने गोविन्द गिल्ला भाई की रचनाओं में प्रवीणसागर का नाम भी दिया है।[7] पर वस्तुत: वे प्रवीणसागर के संग्रहकर्ता, संपादक और टीकाकार ही हैं।[8]

इस काव्य में मृगया, सैन्य, कामविहार, संगीत भेद, नृत्यवाधभेद, नाड़ीभेद, ऋतुवर्णन, इत्यादि का सुन्दर वर्णन है। इस काव्य ग्रन्थ में गुर्जरो सखी, कच्छीसखी, महाराष्ट्री सखी, मारवाड़ी सखी, माथुरी सखी, यावनी (उर्दू) सखी व गिर्वाण सखी अपनी अपनी मातृभाषा में विरहणी नायिका को आश्वासन देती हैं।

□

शेष भाग अगले अंक में

7. रामचंद्र शुक्ल का हिन्दी साहित्य का इतिसास सं. 1997 पृष्ठ 700

8. महेरामणसिंह कृत 'प्रवीणसागर' सम्मेलन पत्रिका संवत् 2013 अंकर –लेखक : अंबाशंकर नागर

कवर पृष्ठ संख्या 20 का शेष भाग

विचित्र साम्य है। रवीन्द्रनाथ कहते थे, "कोई भी आदमी दूसरेका गुरु हो ही नहीं सकता। जीवन हमेशा एक unchartered sea रहा है।" (नाविक लोग जब सफर करते हैं तब समुद्रका नक्शा साथ रखते हैं, जिसमें स्थान-स्थान पर समुद्र कितना गहरा है और पानीका प्रवाह अक्सर किस दिशा में बहता है, इत्यादि सब बातें पायी जाती हैं। हरएक आदमी के लिए जीवन एक ऐसा समुद्र है, जिसमें किसी को ऐसे नक्शे की सहूलियत नहीं मिलती। कोई भी दिशादर्शन नहीं कर सकता। कोई किसी का मार्गदर्शक नहीं बन सकता। हरएक को अपना रास्ता अपने ही पुरुषार्थ से ढूँढ़ना पड़ता है।) रवीन्द्रनाथ कहते थे कि "मैं काव्यात्मा हूँ। मेरी कवि-कल्पना ही मेरा जीवन-पथ तय कर लेती है। न मैंने कभी किसी को अपना गुरु बनाया, न मैं किसी का गुरु बना हूँ; यद्यपि शांतिनिकेतन में सब लोग मुझे गुरुदेव कहते हैं।"

गांधीजी सनातनी ठहरे। उन्होंने गुरुवाद का कभी प्रतिवाद नहीं किया। लेकिन वे कहते थे, "मैं गुरु की खोज में हूँ। स्वयं भगवान ही मेरे गुरु हो सकते हैं। गुरु के मिलते ही मेरी साधना समाप्त हो जायेगी।" गुरु बनने के बारेमें उन्होंने कहा, "मैं ही स्वयं अकेला अपना शिष्य हूँ। इस शिष्य को संभालते और तैयार करते दम निकल जाता है।"

हमारी संस्कृति में धार्मिक और साधक लोगों ने गुरुका महत्त्व इतना बढ़ाया है कि पंचायतन की पूजा के साथ लोगों ने गुरु को ही छठवाँ आयतन बनाया है। उपनिषद्का वचन है–

'यस्य देवे परा भक्तिः यथा देवे तथा गुरौ।' इत्यादि।

(श्वेताश्व., 6, 23)

कबीर जैसे रूढ़ि-भंजक और हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति की एकेश्वरी उपासना के आग्रही संत भी कहते रहे–'गुरु बिन कौन बतावे बाट'। चंद साधकों ने तो औचित्यका ख्याल भी छोड़कर अपना सर्वस्व गुरुको अर्पण करनेकी साधना भी चलायी। इस्लाम, सिख और ईसाई धर्म भी गुरु शरण और गुरुभक्ति के ही अनेक प्रकार हैं। यह सब जानने के कारण ही मैंने ऊपर बुद्ध भगवान, महात्मा गांधी, कवीन्द्र रविबाबू के उदाहरण दिये हैं। मैं मानता हूँ कि मनुष्य को प्रेरणा तो जहाँ से मिले वहाँ से लेनी चाहिए। जिस तरह हरएक रोगी अपने को किसी वैद्य, हकीम, डॉक्टर जैसे किसी धन्वन्तरी के हाथ में सौंप देता है, वैसे ही हरएक साधक के लिए किसी-न-किसी मार्गदर्शक की मदद जरूरी होती ही है। तो भी इस युग में साधना के क्षेत्र में भी प्रयोग-परायण ही बनना पड़ता है, इस ओर जमाने का ध्यान खींचने योग्य मालूम होता है।

1-1-1965

□

निरहंकारिता

निरहंकारिता के समान बलवर्धक दूसरा कोई गुण नहीं है। ज्ञानदेव कहते हैं– 'जलचर चाहे जितना उधम क्यों न करें, समुद्र उनसे ऊबता नहीं; और समुद्र चाहे जितना क्षुब्ध क्यों न हो, जलचरों को उसका डर नहीं लगता।' जिसके आध्यात्मिक प्रभाव से आसपास के लोग चौंधिया जाते हैं, उसकी आध्यात्मिकता में उतनी त्रुटि समझनी चाहिए। जिसकी संगति में सबको हिम्मत आती है, सहजभाव से स्वतंत्रता के साथ बरतना संभव होता है, उसकी आध्यात्मिकता पूर्णता को पहुँची है।

–विनोबा भावे

POSTED AT LPC DELHI RMS, DELHI-06 डाक रजि. संख्या डी.एल.(सी.)-01/1242/2024-26
डाक से भेजने की तारीख 5-6 अगस्त, 2026 Postal R.No.DL(C)-01/1242/2024-26
प्रकाशन की तारीख 3 अगस्त, 2026 मंगल प्रभात मासिक आर.एन.आई.-813/57

गांधीजी की जीवन-साधना

✍ काका कालेलकर

गांधीजी हमारे युग के एक अद्‌भुत युग-पुरुष थे। उनकी विभूति का पूरा आकलन अभी हुआ ही नहीं है। पचास साल से अधिक समय हुआ, मैं गांधीजी की विभूति का चिन्तन करता आया हूँ। मैंने अपने जीवन के करीब तैंतीस बरस उनके कार्य अर्पण किये। जितने साल (1915 से 1948) गांधीजी भारत में रहे, उनके सान्निध्य में मैं उनका काम करता रहा।

शुरू में मुझे साहित्य द्वारा गांधीजी का परिचय हुआ था। उसके बाद उन्हीं के सहवास में और उनकी सरदारी के नीचे काम करते हुए गांधीजी की विभूति का निरीक्षण किया और गांधीजी के देहान्त के बाद विश्व का निरीक्षण करते हुए, जागतिक परिस्थिति को समझते हुए, गांधीजी के व्यक्तित्व का चिन्तन मैं करता हूँ। चिन्तन जितना अधिक होता है, गांधीजीकी विभूतिकी गहराई उतनी बढ़ती जाती है। और बार-बार चित्त कहता है कि सचमुच इस लोकोत्तर युगपुरुष का व्यक्तित्व अद्‌भुत था।

गांधीजी के छोटे लड़के श्री देवदास के बचपन की बात है। किसी गोरे ने उनसे पूछा, 'What is the philosophy of your father?' लड़के ने जवाब दिया, 'My father's philosophy is too simple to be understood.' यानी मेरे पिता का तत्त्वज्ञान इतना सीधा, सादा और सरल है कि लोग उसे समझ नहीं सकते। एक तरह से देखते हुए यह बात सच है। सत्य, अहिंसा, संयम और निःस्वार्थ सेवा, इन चार शब्दों में गांधीजी की जीवन-निष्ठा पूरी आ जाती है। गांधीजी भी शायद ऐसा ही मानते होंगे। वे कहते भी थे, "मनुष्य में कितने भी दोष क्यों न हों, वे अंधेरे के जैसे हैं, सत्य-सूर्य के सामने वे टिक नहीं सकते। मनुष्य अगर पूरी निष्ठा से केवल सत्य का पालन करनेका प्रयत्न करेगा, तो उसके असंख्य दोष आप ही आप दूर हो सकेंगे। परन्तु उतनी पूरी निष्ठाका विचारपूर्वक पालन हो सके तब न?"

गांधीजी की सत्य की व्याख्या बहुत ही व्यापक थी। महाभारतकार ने सत्य के तेरह आकार बताये हैं।[1] सत्य के तेरह पहलू अगर मनुष्य के जीवन में सिद्ध हो गये, तो मनुष्य पूर्ण पुरुष ही हो जायेगा। गांधीजी के मन, सत्य और भगवान में कोई फर्क ही नहीं था। उन्होंने कहा है कि "मैं पहले कहता था, 'भगवान ही सत्य है।' अब मैं कहता हूँ, 'सत्य ही भगवान है।' इस व्याख्या के मुताबिक कोई नास्तिक भी बाहर नहीं रह सकता। भगवान को न माननेवाला व्यक्ति भी सत्य से इनकार नहीं कर सकता।"

गांधीजी के लिए सत्य की उपासना बिल्कुल स्वाभाविक थी। निर्भयता आदि सद्‌गुण अपने जीवन में लाने के लिए उन्हें कोशिश करनी पड़ी। सत्य उनके लिए स्वभाव-सिद्ध था।

गांधीजी ने अपने जीवन में छोटे-बड़े अनेक लोगों से प्रेरणा पायी, लेकिन उनका कोई गुरु नहीं था। बुद्ध भगवान के जैसे वे भी स्वयं सम्बद्ध थे। इस बात में उनका और कविवर रवीन्द्रनाथ का

1. सत्यं च समता चैव दमश्चैव न संशयः।
अमात्सर्यम् क्षमा चैव ह्रीस्तितिक्षाऽनसूयता।
त्यागो ध्यानं अथार्यत्वम् धृतिश्च सततं दया।
अहिंसा चैव राजेन्द्र! सत्याकाराः त्रयोदश।।

शेष भाग कवर पृष्ठ संख्या 19 पर

प्रकाशक एवं मुद्रक **कुसुम शाह** द्वारा **गांधी हिन्दुस्तानी साहित्य सभा**, 1, जवाहरलाल नेहरू मार्ग, सन्निधि, राजघाट, नई दिल्ली-2 के लिए प्रकाशित तथा **आदर्श प्रेस**, 2023, कूचा चेलान, दरिया गंज, नई दिल्ली-2 से मुद्रित। *संपादक* : **प्रो. रमेश भारद्वाज**